International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 2; March 2018; Page No. 1228-1230

श्रम एवं श्रमिक : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ0 राजेश कुमार
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, सेंट विल्फ्रेड पी.जी. कॉलेज, मानसरोवर, जयपुर राजस्थान भारत।

सारांश
प्राचीन भारतीय समाज में श्रमिकों का महत्वपूर्ण स्थान था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से लेकर सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गये शिलालेखों में यह जानकारी मिलती है। प्राचीन समाज में श्रमिकों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था एवं उन्हें मजदूरी दर अच्छी तथा नियमित रूप से मिलती थी। शासन मजदूरों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता था। शासक का कर्तव्य श्रमिकों के लिए समुचित आवास प्रदान करना भी था। शासक मजदूरों के लिए सामाजिक सुरक्षा संबंधी व्यवस्थाऐं भी करता था औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप मजदूर श्रमिकों को अपनी जीविका चलाने का साधन उपलब्ध हुआ। भारत में 1853 में तीन छोटी रेलों की शुरूआत और धीरे–धीरे 1900 तक अधिकांश रेल प्रणाली के पूरे हो जाने और रेल प्रणाली के पूरक के रूप में सड़कों के सुधार व नये सड़क निर्माण ने गांव की पृथकता को तोड़ना आरंभ कर दिया इसका प्रभाव न केवल शहरों की ओर श्रमिकों के जाने पर व्यापार की मात्रा के बढ़ने पर स्पष्ट दिखाई देता है तथा बड़े पैमाने पर कारखाना उत्पादन के विकास का रास्ता खुल गया। ऐसी सभी कारणों से श्रमिक वर्ग का उदय हुआ। औद्योगिक क्रांति का काल पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास का काल माना जाता है। इस समय उत्पादन के साथ में मशीनों आदि परव्यक्तिगत प्रभुत्व उभरने लगा था अधिक पूंजी अधिक उत्पादन के साधनों पर बढने लगी।

मूल शब्द : श्रमिक, श्रम, मजदूरी, औद्योगिक क्रांति कारखाना उत्पादन।

प्रस्तावना
प्राचीन भारतीय समाज में श्रमिकों का स्थान महत्त्वपूर्ण स्थान था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा सम्राट अशोक द्वारा बनवाये गऐ शिलालेखों से यह जानकारी मिलती है कि उस समय श्रमिकों के साथ अच्छा व्यवहार होता था तथा उन्हें मजदूरी अच्छी दर और नियमित रूप से मिलती थी शासक का यह कर्त्तव्य था कि वह यह देखे कि श्रमिकों को जो मिले वह उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफी हो। मजदूरी नकद रूप के अलावा दूसरे रूप में भी प्राप्त होता थी। श्रमिकों के संगठन का कुछ संकेत भी मिलता है। शासक का कर्तव्य श्रमिकों के लिए समुचित आवास व्यवस्था के प्रति भी था। वह ही मजदूरी आदि से संबंधित झगडों को निबटाता था। सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्थाऐं भी पायी जाती थी जैसे
वृद्धावस्था पेंशन, बीमारी के दिनों सेवतन छुट्टी आदि किन्तु मुस्लिम शासन काल में श्रमिकों के साथ अच्छा व्यवहार न होने का संकेत मिलता है। ''आइने अकबरी'' में ऐसे कारखानों का उल्लेख मिलता है जो स्वार्थी अमीरों के अधीन थे और ये अमीर श्रमिकों का शोषण करते थे। इन कारखानों में श्रमिकों के साथ कडा एवं खराब व्यवहार किया जाता था और उन पर कोड़े तक लगाये जाते थे। शासक को श्रमिकों की इन दशाओं के संबंध में थोड़ी ही जानकारी रहती थी। इस बात का भी संकेत मिलता है कि राज्य द्वारा किये जाने वाले विभिन्न कार्यों के अवसर पर अक्सर कैदियों की सेवाऐं भी ली जाती थी। सत्रहवीं शताब्दी के दौरान भारत विश्व व्यापार का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था तथा अपने निर्यातों द्वारा इसे यूरोप से बहुमूल्य धातुऐं प्राप्त होती थी। उस समय जबकि आधुनिक औद्योगिक पद्धति की शुरूआत करने वाले पश्चिमी यूरोप में असभ्य जनजातियाँ रहती थी, भारत अपने शासकों की धन सम्पत्ति और कारीगरों की ऊँची निपुणता के लिए मशहूर था।
19वीं शताब्दी के मध्य तक भारत में हस्तकला उद्योग लगभग पूरी तरह खत्म हो गये थे तथा हस्तकला शिल्पियों की एक बड़ी संख्या के पास जीविका का कोई नया औद्योगिक साधन उपलब्ध नहीं था। भारत में 1853 में तीन छोटी रेलों की शुरूआत और धीरे–धीरे 1900 तक अधिकांश रेल प्रणाली के पूरे हो जाने और रेल प्रणाली के पूरक के रूप में सड़कों के सुधार व नये सड़क निर्माण ने गाँवों की पृथकता को तोड़ना आरंभ कर दिया इसका प्रभाव न केवल शहरों की ओर श्रमिकों के जाने पर वरन् व्यापार की मात्रा के बढ़ने पर स्पष्ट दिखाई देता है, तथा बड़ पैमाने पर वे कारखाना उत्पादन के विकास का रास्ता खुल गया। इन सभी कारणों से श्रमिक वर्ग का उदय हुआ।
''Labour history is Painting history'' श्रम का लंबा इतिहास है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने पर प्रतीत होता है कि वर्तमान में जो श्रमिकों की दशाऐं है वह पहले अनुश्रुत थी। औद्योगिक क्रांति का काल पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विकास का काल माना जाता है। इस समय उत्पादन के साधनों (मशीनों आदि) पर व्यक्तिगत प्रभुत्व उभरने लगा था, अधिक पूंजी अधिक उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण के परिणाम स्वरूप सस्ते श्रम की उपलब्धता बढ़ने लगी। श्रम की सहज उपलब्धता ने श्रमिक की सामाजिक प्रस्थिति को निम्न किया एवं पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में श्रम एक क्रय योग्य वस्तु बनकर रह गया। श्रम को वस्तु (Commodity) समझा जाता था। वह क्रय/विक्रय का विषय था। पहले श्रमिक क्रेता के दास हुआ करते थे। उनका व्यापक भीषण शोषण होता था। कम मजदूरी देना, बात–बात पर उन्हें प्रताड़ित करना, मारना, पीटना आम बात थी। रात–दिन उनसे काम लिया जाता। काम कराने की कोई समय सीमा नहीं थी। विश्राम जैसी उनकी नशीब में था ही नहीं। वह दास प्रथा का युग था उनके स्वास्थ्य, शिक्षा, रहने के मकान आदि की कोई व्यवस्था नहीं थी। किसी तरह से वे अपना गुजर–बसर करने पर विवश थ। परिवारजनों से संबंध कभी–कभार ही हो पाता था। दास के रूप में ही मर जाते थे। समय बीतने के साथ ही दास

प्रथा समाप्त हुई। आगे के समय श्रमिक वस्तु के रूप में नहीं किन्तु बँधुआ मजदूर के रूप में सामने आये सहकारी संस्था या एसोसियेशन प्रथा (Guild System) ने स्थान ग्रहण किया और श्रमिकों को सामूहिक रूप से स्वीकार करने उपलब्ध कराने का कारोबार पनपने लगा। ऐसा पारस्पिरिक सहायता की आड़ में किया जाता रहा।

भूस्वामियों के दिनों में श्रमिकों की स्थिति

जमीदारी उन्मूलन और भूमि व्यवस्था अधिनियम लागू होने के पूर्व बड़े राजा, रजवाड़े, नरेश, तालुकेदार, जमीदार हुआ करते थे। इंच–इंच जमीन पर उनका स्वामित्व रहता था। ये घरेलू नौकरों, खेतों में काम करने वालों की दशा बड़ी ही दयनीय थी। उनकी स्मय की अपनी खेतीबारी नहीं थी वे जमीदरों का सारा काम करते थे। बदले में उन्हें नाममात्र की मजदूरी मिल जाती थी। बतौर अधिकार के वे कुछ नहीं मांग सकते थे। ऊपर से उनसे हरी–बेगारी ली जाती थी। उनसे उपकर लिये जाते थे। जब उनके घर की महिलाऐं गर्भवती होती थी, तो उनकी अच्छी सेहत बनाये रखने के लिए दूध, दही, घी, प्रजा से लिया जाता था। हाथी लाने के लिए कर लगाया जाना आम बात थी। बाग तो जमीदार बिना कुछ दिये ही लगवाया करते थे। जुताई, बुआई, सिंचाई, धान की रोपाई फसलों की कटाई, सारा का सारा का ये श्रमिक ही करते थे। उन्हें एक दृष्टि से देखा जाता था। छुआ–छूत का बोलबाला था। बलान् श्रम लेने की प्रथा थी। काम करने से इंकार करने की कोई श्रमिक जुर्रत नहीं कर पाता था यदि कोई जुर्रत करता तो उसकी चमड़ी उधेड़ दी जाती थी।

बंधक श्रम

श्रमिकों को विभाजन उनकी जाति के आधार पर किया जाता था। जैसे बढ़ई, लौहार, कुम्हार, नाऊ, धोबी, धरिकार, माली, मोची, आदि उनका काम अलग–अलग, किन्तु जातीय आधार पर आवंठित/विभाजित था। इसके अलावा जमींदारों का हल जोतने वाले, हलवाहे और गाय–भैंस चराने वाले चरवाहे के रूप में वर्गीकृत थे। श्रमिकों से बेगार लेना एक बहुत बड़ी बुराई थी। बेगार से बलात् श्रम अभिप्रेत है। यह बिना कुछ दिये अस्वेच्छपा कार्य लेने का तरीका था। संविधान में बेगार शब्द परिभाषित नहीं किया गया है। अनुच्छेद 23 व 24 में मानव के दुर्व्यापार, बलात् श्रम और मजदूरी प्रथा को प्रतिषिद किया गया है। उसका पालन न करना दण्डनीय अपराध माना गया है। बन्धित श्रम पद्धति उत्पादन अधिनियम 1976 पारित किया गया। नीरजा चौधरी बनाये मध्यप्रदेश राज्य में वंचित बन्धित श्रमिकों की वे पुर्नवास की व्यवस्था सुनिश्चित करना, ताकि वे फिर शोषण का शिकार न हो सके। फरीदाबार में पत्थर की खदान में दयनीय दशा के काम करने वालों की जाँच करना और चिहित करना, उनके पुर्नवास की व्यवस्था और प्रतिकर देन का आदेश देना।

औपनिवेशिक काल में श्रमिक

विश्व स्तर पर देखा जाये तो उपनिवेशवाद का दायरा बहुत ही व्यापक था। श्रमिक विधियॉ या तो थी नहीं, यदि थी तो वे मुख्य रूप से मालिकों के हितों का सम्वर्द्धन करती थी। श्रमिकों की स्थिति बहुत ही शोचनीय थी। सेवा शर्ते कठोर और कार्य की दशाऐं भी खराब थी। श्रमिकों को उनके श्रय के अनुपात में मजदूरी नहीं दी जाती थी। 'हायर एण्ड फायर' का सिद्धान्त लागू होता था। नियोजक मनमाने ढंग से अपनी शर्तों को मनवाकर श्रमिकों को नियुक्ति अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए तो करता था लेकिन जब चाहता था उन्हें हटा देता था। ''यूज एण्ड थ्रो' की प्रथा प्रचलन में थी। कार्य के घंटे अधिक थे।, विश्राम की अवधि कम, साप्ताहिक छुट्टी भी नहीं मिलती थी। पूर्व के अवसरों पर थी काम से श्रमिाकें को छुटकारा नहीं मिलता था। छोटी–छोटी गलती उन्हें प्रताड़ित, अपमानित, तथा शारीरिक यातना और दंड आम बात थी। उनके साथ पशुवत व्यवहार किया जाता था। अधिक से अधिक काम लेना और उसके अनुपात में क्रय मजदूरी देना श्रम–नीति का अंग था।

श्रमिक का यथा स्थितिवाद से कल्याणमूलक स्थिति तथा वैश्वीकरण तक का सफर

इंग्लैण्ड में अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से शुरू होकर 19वीं शताब्दी के पहले चतुर्थांश तक पूरी तरह से होने वाली औद्योधिक क्रांति ने नये श्रम दर्शन को जन्म दिया। मालिकों और सरकार ने मजदूरों के श्रम के महत्व को समझा और उत्पादन में उनकी क्षमता के मूल्य को पहचाना। औद्योगिकरण का युग आया और गाँवों से काम की खोज में मजदूरों का नगरों की ओर पलायन होने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रम की कीमत कम होती गई। 'लेबर–सरप्लस' का लाभ नियोजकों, उद्योगपतियों को मिला। सामूहिक नहीं बल्कि, व्यक्तिगत स्तर पर मजदूरी तय कर ली जाती थी। इसीलिए मजदूरी की दरों में बड़ी विणमता थी। कुछ भी मजदूरी लेने के लिए मजदूर अपनी खराब आर्थिक स्थिति के चलते तैयार हो जाता था। लेकिन समय ने करवट ली। श्रमिक वर्ग में जागरूकता आई। उन्होंने अपने श्रम और समय की कीमत पहचानी। उन्हें इस बात का मान हुआ कि उनके गाढ़े श्रम और पसीने का अधिकतम लाभ तो उद्योगपति को मिल रहा है। उसके बदले में और उसके अनुपात में किया जाने वाला भुगतान नगण्य है। वे मुखर होने लगे इसका नतीजा यह हुआ कि सरकार को श्रमिकों की दयनीय दशा में सुधार लाने के लिए कदम उठाने के लिए बाध्य होना पड़ा।

पूजीपति/नियोजक श्रमिकों से व्यक्तिगत संपर्क और संविदा करता था। ऐसे में वह 'समान कार्य के लिए समान मजदूरी' के नियम का पालन करने के लिए बाध्य नहीं था। जिसके साथ जो मजदूरी तय हो गयी, वही मजदूरी वह पाता था। इसके नाते मजदूरों की मजूदरी में बड़ी विषमता थी। अपने असंतोष को श्रमिक अपनी दयनीय आर्थिक स्थिति और विवशता के कारण प्रकट करने में सर्वथा असमर्थ थे। चाहे जब रखने और चाहे जब निकाल देने का नियोजक का एक प्रकार का विशेषाधिकार था। शासन स्तर से उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं था। इसी कारण नियोजकों के मनमानेपन तथा घोर शोषण के श्रमिक शिकार हुआ करते थे। छोटी–छोटी बात के लिए मारना–पीटना और काम पर से हटा देना आम बाती थी। संविदा वैयक्तिक होने के नाते उसे कभी भी तोड़ा जा सकता था। लेकिन समय के बदलाव के साथ श्रमिकों को इस स्थिति से उबारने और उनकी दशा में सुधार लाने का प्रयास किया गया। स्थिति कल्याणमूलक बनाने में ही सामाजिक हित समझा गया। शिक्षा के प्रसार और जागरूकता तथा श्रमिकों को अपना संघ बनाकर अपने हितों में संरक्षण की दिशा में प्रयास आदि बातों ने भी उनकी दशा में सुधार लाने में अहम् भूमिका निभायी। श्रमिक भी अपने श्रम के महत्व/मूल्य को समझने लगा। समय ऐसा आया कि मालिक और मजदूर ही नहीं, अपितु नियोजक और नियोजिती का सम्बन्ध स्थापित किये जाने की बात प्रारंभ हुई। उन्हें एक दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी नहीं बल्कि पूरक और इण्टरप्राइज/इण्डस्ट्रीज में सहयोगी समान प्रस्थिति वाला माना जाने लगा। पूंजी और श्रम को बराबर महत्व दिया गया क्योंकि पूंजी निवेश के बाद भी उत्पादन तो श्रमिकों के सहयोग, परिश्रम और उनकी पूरी क्षमता के उपयोग

पर ही निर्भर करता है। ब्रिटेन समेत अन्य यूरोपीय देशों में भी श्रमिकों के कल्याण नियोजन की सुरक्षा, नियमित और निर्धारित मजदूरी का भुगतान, काम के घंटों को निश्चित करना, मनाने ढंग से नियोजन से न हटाना, आदि के बारे में नियमों और विज्ञापनों के द्वारा प्रावधान किये गये। यह दोनों पक्षों के ही नहीं बल्कि समाज के व्यापक हित में था।

21वीं शताब्दी में वैश्वीकरण की प्रक्रिया से सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से विश्व एक 'ग्लोबल विलेज' सा हो गया है। इसलिए श्रमिकों को अब एक निश्चित दायरे में सीमित न पाकर विश्व स्तर पर देखा जा रहा है। आवागमन के साधनों की प्रचुरता और सूचना प्रौद्योगिकी इसमें बड़ी ही प्रभावी भूमिका निभा रही है। अन्तर्राज्यीय ही नहीं, अन्टर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों का अधिकाधिक आव्रजन एवं प्रवजन यद्यपि विस्तारित हो रहा है। 'बारगेनिंग' सीमित क्षेत्र में नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर होने लगी है। फिर भी क्षेत्रीय विषमता अब भी विद्यमान है।

भारतवर्ष में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात एक कल्याणकारी राज्य होने की अवधारणा के साथ संविधान का निर्माण हुआ जिसमें श्रमिकों के हितों का विशेष ध्यान रखते हुए पुरुष, महिला तथा तरुणों के नियोजन, उनकी गरिमा, कल्याण, स्वास्थ्य, सुरक्षा आदि के संबंध में प्रावधान किया गया। दुर्घटनाओं से होने वाली मौत या अनर्हता के लिए प्रतिकर, मजूदरी भुगतान की समयबद्धता, संघ बनाने का अधिकार, सेवा शर्तों की नियमावली, औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए मशीनरी गठित करने, हड़ताल, तालाबंदी, जबरी छुट्टी, स्वास्थ्य, कल्याण, सुरक्षा, बोनस, ग्रैच्युटी, समानकार्य के लिए समान वेतन, न्यूनतम मजदूरी, भविष्य निधि, बीमा आदि के संबंध में प्रावधान बनाने के लिए अनेक अधिनियम पारित और लागू किये गये। मातृत्व लाभ अधीनियम, 1961 के द्वारा महिला कर्मकारों को प्रसूति सुविधा दिये जाने की व्यवस्था की गई। श्रमिकों के व्यापक हित में समान भुगतान अधीनियम 1976, बंधक मजदूरी अधीनियम 1976 आदि पास किये गये।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19, 23, 24, 38, 39, 39(क) तथा 51 वें उपबन्ध श्रमिकों के हितों के पोषक है। इसके अलावा उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय ने अपने अधिनिश्चयों से श्रमिकों के हितों के संरक्षण तथाउनके कल्याण के लिए बहुत ही प्रभावी पृष्ठभूमि तैयार की और सरकार को इस दिशा में अग्रसर होने तथा ठोस कदम उठाने का निर्देश दिया। इससे श्रमिकों का शोषण बहुत हद तक दूर किया जा सका और उन्हें सामाजिक न्याय और सुरक्षा प्रदान करने का मार्ग भी प्रशस्त हो गया।

श्रम के प्रति परिवर्तनशील परिप्रेक्ष्य; संविदा से सहभागिता तक

समय के बदलने के साथ ही उद्योगपतियों, सरकारों के विचार बदले। श्रम को केवल क्रय वस्तु ही नहीं अपितु उद्योग की जीवनदायिनी, शांतिपुंज उपादेय समझा जाने लगा। श्रम को औद्योगिक उत्पादन की प्रक्रिया का उतना ही महत्वपूर्ण अंग माना जाने लगा जितना कि पूंजी को, दोनों को इस निमित्त एक दूसरे के पूरक तथा सहभागीदार के रूप में मान्यता मिली। अब वैयक्तिक संविदा का स्थान सामूहिक संविदा ने ग्रहण किया। सरकारी स्तर से दोनों के सम्बन्ध बेहतर बनाने के प्रयास में नये–नये विद्यान लागू किये गये। श्रमिकों के काम की दशाओं, घंटों, विश्राम, वेतन/मजदूरी, साप्ताहिक अवकाश, राष्ट्रीय पर्वों पर सवेतन छुट्टी, ग्रैच्युटी, पेंशन, प्राविडेन्ट फंड, पारिवारिक पेंशन जीवन बीमा, स्वास्थ्य कल्याण, सुरक्षा आदि के लिए प्रावधान बनाये गये जिनका पालन करने के लिए नियोजक बाध्य हुए, भले ही वे उनकी इच्छा के विपरीत लागू किये गये। महिलाओं की प्रसूति–प्रसुविधा के लिए विशेष प्रबंध किया गया। बन्धुआ मजदूर प्रथा संविदा श्रम समाप्त करने के लिए अधिनियम बने। समान वेतन अधिनियम 1976 को लागू किया गया। इससे श्रमिकों को संविदा के स्थान पर नियमित श्रमिक की प्रस्थिति प्राप्त हुई।

संविधान में प्रावधान करके उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की साझेदारी सुनिश्चित करने पर जो दिया गया। श्रम की पुरानी अवधारणा समाप्त हो गयी जिसमें श्रमिकों को कोई सामाजिक प्रस्थिति प्राप्त नहीं थी। उनका नियोजन वैयक्तिक संविदा पर निर्भर था 'हायर एण्ड फायर' के सिद्धान्त को समाप्त करके श्रमिकों की सेवा को सुरक्षा प्रदान की गई। जबरी छुट्टी, छंटनी, उद्योगों की तालाबंदी, उनके ट्रान्सफर आदि के प्रतिबंध क्रमशः बनाये और लगाये गये। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गयी जो नियोजक की इच्छा पर नहीं थी। उसे देना उनका सांविधिक दायित्व बनाया गया। अब वैयक्तिक विवाद भी औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 22 के अन्तर्गत औद्योगिक विवाद की परिधि में ला दिया गया।

संदर्भ सूची

1. बी.सी. अग्रवाल : लेबर रिलेशन इन इंडिया, एशिया बुक हाउस, दिल्ली, 1966।
2. एस. अमीन : मॉर्डन माईग्रेशन इन अफ्रीका, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1974।
3. जी. बाल्डविन : इन्डस्ट्रीयल ग्रोथ इन इंडिया, न्यूयॉर्क फ्री प्रेस, न्यूयॉर्क, 1959।
4. ई. डब्ल्यू. बक्के : दी अन इन्प्लायड वर्कर, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, अमेरिका, 1940।
5. बालकृष्ण कुमावत : सोशियल सिक्योरिटी एण्ड लेबर लॉ इन इंडिया, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई 1971।
6. शिवराम बी. : द इंस्डस्ट्रीयल लेवल इन इंडिया सुनील पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1979।
7. बासुदेव सरकार : लेबर लॉ, बॉम्बे पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1997।